International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 4; Issue 6; June 2017; Page No. 120-123

फड़ कला से प्रभावित चित्रकार : रामेश्वर सिंह

डॉ. बीना जैन
सह–आचार्य चित्रकला विभाग राज. वि.वि., जयपुर, भारत

प्रस्तावना

भारत में बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश के अनेक स्थानों पर रामायण, महाभारत व पुराण आदि पर आधारित कथाओं को कपड़ों के लम्बे आयताकार पट्टों पर चित्रित करने की प्रथा प्रचलित रही है इसे ही स्थानीय भाषा में पट्ट, पड़ अथवा फड़ का नाम दिया गया। इन कथाचित्रों में राम–कृष्ण के अतिरिक्त लोक–देवताओं एवं लोक–देवियों की कथाओं के साथ–साथ स्थानीय वीर नायकों के जीवन–वृत्त जिन्होंने देवता का रूप ले लिया है, को भी चित्रित किया जाता है। पट चित्रण आज जिस स्वरूप में है उनका निर्माण और विकास इस रूप में एकाएक नहीं हो गया था। यह विकास कई युगों की देन है। जैसा कि कहा गया है कि पट चित्रण में कपड़े पर किसी एक प्रसंग को कलात्मक रूप से अभिव्यक्त किया जाता है।

पट चित्रण की परम्परा अति प्राचीन है। 'मत्स्य पुराण' और 'नरसिंह पुराण' में पट्ट पर शिव और विष्णु के विभिन्न स्वरूपों के अंकनोपरान्त पूजने के संदर्भ मिलते हैं। 'मानसार' जैसे शिल्प ग्रन्थ में पट (कपड़े) पर पाँच रंगों के प्रयोग से आभास चित्र बनाने का वर्णन मिलता है।[1] जिसके रूप वातावरणीय परिप्रेक्ष्य में बदलते गये तथा क्षेत्र विशेष के कारण जहाँ इसे अलग–अलग नामों से सम्बोधित किया जाता रहा। चित्रपट, भिक्षुक चित्रफलक (मंख), कुण्डलित चित्रावली, यमपट्टिका, चित्रकथी, जादु पटुआ, गरोड़ा, आदि शब्दों का प्रचलन फड़ के लिए ही किया जाता रहा है।[2]

राजस्थान में लोक परम्परा के अनेक मनभावन रूप प्रचलित है। यहाँ के जन–जीवन में लोक परम्परा को जीवित रखने वाली एक कला है– फड़ चित्रकला। फड़ चित्रण का उद्‌गम पट चित्रों से हुआ है। 12वीं–13वीं शताब्दी में आतताइयों द्वारा भित्ति–चित्रों को क्षति पहुँचाने के कारण पट चित्र निर्मित होने लगे। जापान की कई 'स्क्रोल पेंटिंग' (Scroll) इसका जीता–जागता उदाहरण है। पट चित्रों का प्रारम्भ जैन शैली में अंकित विषयों से हुआ। इन पटों में तीर्थंकरों के उपदेश एवं जीवन लीला को दर्शाया जाता था।[3] उदाहरणार्थ – पंचतीर्थी पट, यह 1433 ई. में अपभ्रंश शैली में चित्रित हुआ इसमें जैन धर्म के पाँच तीर्थों का चित्रण है।[4] सन् 1812 ई० में जर्मन इतिहासकार जैकब व विल्हैम द्वारा फड़ चित्रण पर किये गए शोध में इनके लिए 'VOLKSKUNDE' शब्द का प्रयोग किया गया। जिसका शाब्दिक अर्थ 'लोकवृत्तान्त गायक' है। 1846 ई. में विलियम जॉन थॉमस ने इन्हें एक नया नाम 'FOLKLORE' दिया।[5] 'फड़ चित्रण' के कलाकार इस कला को 400 वर्ष पुरानी मानते हैं। कहा जाता है कि फड़ चित्रकारी का आरम्भ एक महिला द्वारा किया गया था। ''किवदन्ती है कि नरवरगढ़ के राजा ने अपनी पुत्री जैवंती के सगपण के लिए पुरोहितों को भेजा। भटक–भटकाव कर पुरोहित खाली हाथ लौटा तब स्वयं जैवंती ने पुराहित को चौबीस भाइयों का एक रेखांकन देते हुए कहा कि 'जहाँ भी ये भाई मिलें, सगपण तय कर आना'। फड़ चितराम का मूल उत्स इसमें भी खोजा जाता है। ये चौबीस भाई बगड़ावत थे। इन्हीं बगड़ावतों के बाद देवनारायण हुए। बगड़ावत नामक लोकगाथा में एक प्रसंग आता है जिसमें देवनारायण छोछू भाट को चतर छीपा के यहाँ भेजकर एक कुल देवता की तस्वीर बनाकर लाने को कहते हैं। भाट छीपे से चौबीस अवतारी भाई और जितनी धरती आसमान में बातें हुई उन्हें चित्रित करने को कहता है। छीपा उनके कहे अनुसार कपड़े पर चितराम माँडता है। जब वह चितराम देवजी के सम्मुख लाया जाता है तो देवजी उसे देखकर भाट से कहते हैं –'तू यह क्या लाया रे,' यह तो पड़े ही पड़े है'। चतर छीपा फूला नहीं समाया उसने वैसा ही चित्रांकन प्रारम्भ कर दिया और वह चल निकला। यही पड़ै–पड़–फड़ के रूप में प्रचलन में आया। इसके फड़ और पड़ दोनों नाम आज प्रचलन में हैं।''[6]

लोक देवताओं को समर्पित 'फड़' केवल धार्मिक वस्तु ही नहीं है वरन् लोक नाट्य, गायन, वादन, मौखिक साहित्य, चित्रकला व लोकधर्म का एक सुन्दर संगम है जो भारत के अतिरिक्त और कहीं इतने रूपों में नहीं मिलता।

इस प्रकार फड़ चित्र अपने में छह लोक कलाओं को समेटे हुए है। लोक–गाथा, लोक–साहित्य, लोक–चित्र, लोक–नृत्य, लोक–गायन एवं लोक–वाद्य।[7] 'फड़' चित्रण एवं लोक संगीत के माध्यम से लोक गाथाओं को कलाकार द्वारा नृत्य एवं गायन शैली में प्रस्तुत किया जाता है। छोटे–बड़े कपड़ों पर अंकित की जाने वाली यह कला एक प्रकार की चित्र–गाथा है, जो एक विशेष क्रम से ही चित्रांकित की जाती है। इसे वृत्तान्त के रूप में विशेष समुदाय द्वारा प्रवचन के रूप में गाया जाता है। फड़ में चित्रित क्रम को इधर–उधर नहीं किया जा सकता है। यही कारण है कि फड़ कहीं पर निर्मित हो या किसी भी काल में बनी हो, सभी लोगों को एक ही क्रम में याद रहती है।

फड़ वाचन का कार्य वंशानुवंश से कुछ विशेष व्यक्तियों द्वारा किया जाता है इन्हें भोपा कहते हैं। पाबूजी की गाथा सुनाने वाले भोपे–भोपी नायक या भील जाति के होते हैं। मूलतः दो व्यक्ति जिसमें एक स्त्री व एक पुरुष भोपा होता है। भोपे के पास 'रावण हत्था' नामक लोक–वाद्य होता है। भोपी के हाथ में छड़ी के सिरे से लटकता हुआ दीपक होता है। गाते समय भोपी फड़ के चित्रों व भावों को छड़ी की सहायता से इंगित करती रहती है इसमें चित्रित चित्र एक विशेष क्रम में होते हैं। अतः भोपी की छड़ी स्वतः ही गायन के साथ ऊपर–नीचे चलती रहती है। रामदेवजी की फड़ भी भोपा–भोपी मिलकर बाँचते हैं। भोपा–भोपी पति–पत्नी या माँ–बेटा भी हो सकते हैं। देवनारायण अथवा बगड़ावतों की फड़ के वाचक (दोनों पुरुष) गुर्जर, जाट, बलाई या कुम्हार जाति के भोपे होते हैं। ये उसे 'जन्तर' नामक लोक–वाद्य बजाते हुए सुनाते हैं। यह देवी सरस्वती की वीणा के समान होता हैं। जन्तर के साथ कहीं–कहीं मंजीरा तथा चीपिया भी बजाया जाता है।[8]

राजस्थान के ग्रामीण परिवेश में लोक गायकों द्वारा लोक–कथाओं की प्रस्तुति चौपाल में सभी ग्रामवासियों के समक्ष की जाती है। ये कथा वे अपने लोक देवता से सुखद मंगलमय जीवन या किसी मुसीबत से सकुशल निकल आने की खुशी में बँचवाते हैं। इन लोक कथाओं में पाबूजी, (चित्र–1) देवनारायणजी, तेजाजी, गोगाजी व रामदेवजी की फड़ विशेष लोकप्रिय है। धीरे–धीरे अन्य

देवताओं से सम्बन्धित फड़ें भी बनने लगीं जिसमें रामदला, कृष्णदला व भैंसासुर की फड़ प्रमुख रही है। 'भैंसासुर की फड़' जिसे चामुण्डा, महिषासुरमर्दिनी तथा माताजी की फड़ भी कहते हैं। इस फड़ का वाचन नहीं किया जाता वरन् चोरी करने जाते समय इसकी पूजा कर शुभ–शकुन लिए जाते हैं जो सम्भवतः धाड़ायती करते थे इसे बावरी या बागरी जाति के लोग रखते हैं।[9] पाबूजी की फड़ का प्रचलन अधिकाशतः बीकानेर, जोधपुर, बाड़मेर, जैसलमेर तथा शेखावाटी क्षेत्रों में है, जबकि देवनारायण तथा बगड़ावतों की फड़ बाँचने वाले कोटा, बूंदी, अजमेर, भीलवाड़ा, झालावाड़ आदि क्षेत्रों में अधिक मिलते हैं। अलवर तथा भरतपुर क्षेत्र में रामदला की कथा गाई जाती है तथा कृष्णदला बहुत कम प्रचलन में है। देवनारायण, पाबूजी और रामदेवजी की कथाएँ रात्रि में गाई जाती हैं जबकि रामदला और कृष्णदला दिन में गाये जाते हैं। देवनारायणजी की फड़ देवोत्थान एकादशी से बाँचना शुरू होकर देवशयनी एकादशी तक बन्द हो जाती है।[10]

चित्र 1: पाबूजी की फड

वर्णनात्मक चित्र शैली में अंकित फड़ लम्बे कपड़े पर बनाई जाती है इस लम्बे कपड़े या कैनवास को एक सिरे से उसी धूरी पर समेटा जाता है इस तरह तहें होने पर (परत पर परत होने से) ही इसका नाम 'फड़' पड़ा। देवनारायणजी की फड़ चौबीस हाथ लम्बी, पाबूजी की बारह–तेरह हाथ लम्बी, रामदेवजी की आठ हाथ और माताजी की पाँच से सात हाथ तक लम्बी होती है। इसे बनाने में क्रमशः एक माह, दस–पन्द्रह दिन व चार–पाँच दिन लगते हैं। चातुर्मास में जब देव सो जाते हैं, तब इस ऋतु में फड़ें चित्रित नहीं की जाती हैं, क्योंकि अनिष्ट का भय रहता है। अन्य आठ माह फड़ें चित्रित होती है। फड़ें फट जाने अथवा जीर्णशीर्ण हो जाने पर प्रसिद्ध तीर्थ पुष्कर जी के तालाब में विसर्जित कर दी जाती हैं साथ ही सवामणी की परसादी का भी भोग लगाया जाता है।

फड़ हस्त निर्मित कपड़े (खुरदरी व मोटी रेज़ी) पर बनाई जाती है। कोरे कपड़े पर गेहूँ या चावल का कलफ लगाकर धूप में सुखा दिया जाता है फिर मोहरे (लकड़ी से बना घुटाई करने का उपकरण) से उसकी घुटाई की जाती है जिससे कपड़ा ओपदार, चिकना एवं सफेद हो जाता है।[11] प्रायः सभी प्रकार की फड़ों में सर्वप्रथम कच्चे पीले रंग से चित्रों की रेखाएँ खींच ली जाती हैं रेखाएँ खींचने की इस क्रिया को जोशी लोग 'चॉक देना' कहते हैं। फड़ चित्रण में हलके पीले, सिन्दूरी, गहरे पीले, हरे, भूरे, लाल, काले एवं आसमानी रंगों को क्रमानुसार लगाया जाता है। सिन्दूरी रंग आकृति में, पीला रंग आभूषणों में, सलेटी रंग वास्तु में, नीला रंग पानी, आसमान व पर्दों में, हरा रंग पेड़–पौधे, सहनायिकाओं की साड़ी व अंगोछे में प्रयोग किया जाता है। नायक को सदैव लाल रंग की पोशाक व खलनायक को हरे रंग की पोशाक में चित्रित किया जाता है। रंग भराई के पश्चात् काली स्याही से सुदृढ़ रेखांकन किया जाता है जिससे चित्र उभरकर पूर्ण ओजस्विता को दर्शाता है। भोपा जब फड़ लेकर जाता है तभी इसकी आँख बनाई जाती है और तभी से यह फड़ जीवित या भाव रूप में आ जाती है। द्विआयामी आकृति, चमकीले गहरे रंग व कुशल रेखांकन ही फड़ चित्रण की विशेषता है।

फड़ कलांकन का प्रारम्भ श्री टेकचन्द जी, मुकन्दीलाल जी जोशी द्वारा माना जाता है। एकलिंगनाथ जी, जयराम जी जोशी आदि अनेक कलाकार इनके अनुगामी रहे। शाहपुरा (भीलवाड़ा) तथा चित्तौड़ फड़ निर्मिति के प्रसिद्ध स्थल रहे हैं। इस विशिष्ट परम्परा को दुर्गेश जोशी व श्रीलाल जोशी परिवार के लोग पीढ़ियों से अपनाते रहे हैं। 'छीपा' जो परम्परागत रूप से कपड़े रंगने और छापने का कार्य करते हैं, उनके जोशी गोत्र के कुछ परिवार ही फड़ बनाते हैं। दुर्गेश जी भी इसी परिवार से सम्बन्ध रखते हैं। श्रीलाल जी के अनुसार–''फड़ कला की शुरूआत जोशी परिवार से हुई है। हमारा खानदान लगभग 700 वर्षों से इस कार्य को कर रहा है। 400 वर्षों तक शाहपुरा में कार्य करने के बाद पिछले 200 वर्षों से पूरा परिवार भीलवाड़ा आ गया। आज यह शहर फड़ निर्माता चित्रकारों के कारण संसार के अनेक देशों में जाना जाता है।'' जोशी चित्रकारों के अतिरिक्त इन परम्परागत चित्रों को और कोई नहीं बनाता है। चित्रकारों के कथनानुसार ये मूल निवासी भीलवाड़ा के निकट गाँव 'पुर' के हैं, जहाँ इनकी इष्ट देवी का मन्दिर है। 16वीं शताब्दी में शाहपुरा राजदरबार में इन्हें स्थान मिला और यह दरबारी चित्रकार हो गए। परन्तु यह अपने परम्परागत भोपा क्रेताओं के लिए काम करते रहे।[12]

वर्तमान में देश–विदेश में ख्याति प्राप्त चित्रकार श्रीलाल जोशी के फड़ चित्र विभिन्न संग्रहालयों तथा प्रतिष्ठित संस्थानों के आकर्षण बने हुए हैं। श्रीलाल जी ने अपनी पारम्परिक चित्रकारी के मूलभाव शिल्प को यथावत रखते हुए राजस्थानी प्रेम, श्रृंगार तथा वीर रस प्रधान कुछ नई फड़ों का सर्जन भी किया है। जिनमें हाड़ीरानी, मूमल–महेन्द्र, पृथ्वीराज–संयोगिता, ढोला–मारू, पद्मनी जौहर, हल्दीघाटी व गणगौर नामक फड़ें सर्वत्र प्रशंसित हुई हैं।

भारत सरकार द्वारा फड़ चित्रण कला के प्रोत्साहन हेतु सन् 1981, 1982 व 2003 में विशेष आवरण और डाक टिकट भी जारी किये गये हैं।

भारतीय चित्रकला पर भी पारम्परिक फड़ संयोजन व रंग योजना का प्रभाव दिखाई पड़ता है रामेश्वर के चित्र पारम्परिक व आधुनिक कला का उत्कृष्ट समन्वय प्रस्तुत करते हैं। उनका उद्देश्य चित्रकला के माध्यम से प्राचीन भारतीय वैभव पूर्ण अतीत को वैश्विक स्तर पर उजागर करना है। (चित्र–2)

चित्र –2 : प्रेमी युगल, चित्रकार–रामेश्वर सिंह

राजस्थान के देवगढ़ (उदयपुर) जिले में 5 फरवरी, सन् 1948 में जन्में रामेश्वर सिंह के विविध आयामी व्यक्तित्व की भाँति उनकी कला भी विविध आयामी है, इसमें अनेक तत्त्वों की सफल समन्विति है। राजस्थानी परिवेश में लालन–पालन, भीलवाड़ा से विज्ञान विषय में स्नातक उपाधि, तत्पश्चात् सन् 1982 में सुखाड़िया विश्वविद्यालय से रामेश्वर ने चित्रकला का विधिवत् प्रशिक्षण प्राप्त कर चित्रकला में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। इसने उनके कलात्मक सृजन के विकास की दशा व दिशा को प्रेरित प्रभावित किया।[13]

रामेश्वर सिंह ने राजस्थान की समृद्ध लोककला को अपनी कलाकृतियों द्वारा आधुनिक रूप में प्रस्तुत किया। उनके चित्रों में कला, संस्कृति, इतिहास और मानव विज्ञान एक–दूसरे के पूरक रूप में हैं। कोलाज में समाई आकृतियों में पारम्परिक चित्र–शैलियों में फड़ है, फूल–पत्तियाँ हैं, माँडनें है और पुरातन वस्तुओं यथा–बहियाँ, जन्मपत्रियाँ, कार्ड, किसी धर्म ग्रन्थ के गले हुए पन्ने है, पूर्ण नहीं बल्कि अधजले स्वरूप में। मानों काल के गाल में समाती हुई इन वस्तुओं को पुनः जीवित करने का प्रयास कर रहे हो। पुरानी वस्तुओं के अवशेष रूप में मूल कैलिग्राफी इस सत्य का अनुभव भी दर्शक को कराती है कि वह ऐसे ही समाप्त हो जायेगा। (चित्र–3)

चित्र 3: लोक देवता, चित्रकार–रामेश्वर सिंह

रामेश्वर की चित्रण पद्धति के विषय में राजेश कुमार व्यास कहते है, कि ''पुरानी चीजों को जलाकर कम्पोजिंग के हिसाब से वे कलाकृतियों में पेस्ट कर लेते हैं। रंगों का संतुलन इस कदर है कि सभी संयोजन पूर्ण लगते हैं, सहज ही उनमें कॉम्पेक्ट फिलिंग होती है।''[14]

नरेन्द्र इष्टवाल के अनुसार :– विज्ञान के छात्र होने के कारण प्रयोग करना रामेश्वर सिंह की अपनी विशेषता है। वे कहते हैं– ''एक दिन मैं लियोनार्डो और वानगॉग के चित्रों के साथ प्रयोग करूँगा'' उन्होंने कई विषयों को प्रयोग के लिए चुना यथा देवी–देवता, प्रेमी–प्रेमिकाएँ, न्यायालय के दृश्य और उदयपुर की तंग गलियाँ।[15]

रामेश्वर सिंह जी ने अपने चित्रों के विषय आंचालिक परिवेश के कथानकों से उठाये हैं, राजस्थान की चित्रात्मक विरासत में आपने अतीतकालीन गौरव की झाँकी देखी है और वह उससे बहुत अधिक प्रभावित भी हैं। राजस्थान के वीर पुरुषों की कथाओं, प्रेमी–प्रेमिकाओं के साथ देवी–देवताओं, विशेषकर लोक देवी–देवताओं को चित्रित किया है। समसामयिक कला शैली में पारम्परिक रूपों का अंकन अनूठा है, बिलकुल नये रूप में। रूपाकारों का संयोजन पुरातन होते हुए भी नूतन है। चित्र–योजना में आकृतियों को जिस ढंग से गूँथा है, उनकी यह बुनावट उनकी सृजन प्रतिभा का परिचायक है। चित्र बताते हैं कि आपने कला परम्परा का गहराई से अध्ययन व मनन किया है। मानवाकृतियाँ बलिष्ठ और शौर्य पराक्रम से भरपूर हैं, वहीं नारी आकृतियाँ कोमल–कमनीयता के साथ अंकित है। प्रेमी युगल उनके चित्रों की विशेषता है। चित्र अपनी चित्रात्मक विशेषताओं के कारण दर्शक को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकते। इसमें जीवन की जो गति है, लय है, वह उसे जीवन्त तो बनाती है, यथार्थ के सौन्दर्य को भी उजागर करती है।[16] प्रगतिशील कलाकार समूह के संस्थापक सदस्य एफ.एन. सूजा रामेश्वर की कृतियों के विषय में कहते हैं – "His paintings are very compact; there's a lot in them: figures, forms and mythological content. Very colourful too. The forms are carefully constructed; there's craftsmanship in his work, and skill. Sort of magic mantras and omens appear mysteriously in Rameshwar's paintings." [17]

रामेश्वर के उल्लेखनीय चित्रों में लवर्स मोनूमेन्ट, झूला–झूलती महिला, देव प्रतिमाएँ, गोगाजी पीर, घोड़े पर सवार नायक व सांप, प्रेमी युगल, सांप तान्त्रिक प्रभाव, मछली व मानव एवं फड़ शैली का अंकन आदि हैं। लवर्स शृंखला में आपने घोड़ों, सर्पों व तोते को अधिक चित्रित किया है। (चित्र–4) यहाँ वे राजस्थानी वीर कथाओं, ढोला–मारू, रामदेवजी आदि से प्रभावित नजर आते हैं, बैल, घोड़े, सर्प, मछली, पक्षी व कमल के फूल उनका लोक–जीवन के प्रति लगाव को इंगित करते हैं। गणेशजी को भी उन्होंने भिन्न–भिन्न रूपों में चित्रित किया है, जिसमें परम्परागत भारतीय चित्रकला के सारे मान–उपमान देखने को मिलते हैं। उनके आकार प्राचीन भारतीय राजा–महाराजाओं का स्मरण कराते हैं।

चित्र 4: प्रेमी युगल, चित्रकार–रामेश्वर सिंह

वे मूलतः मिक्स मीडिया में कार्य करते हैं, जिनमें एक्रेलिक, तैल, जल तथा कोलाज हैं। वे अपने कैनवास को संगीतात्मकता के साथ तैयार करते हैं। पहले कैनवास पर फेविकोल का लेप लगाते हैं, बाद में प्लास्टिक एक्रेलिक द्वारा उस पर तैलीय घोल चढ़ाते हैं। इसके बाद एक्रेलिक रंगों का उपयोग करते हैं तथा विशेष प्रभाव के लिए कोलाज का उपयोग करते हैं। इस प्रक्रिया के बाद वे अपने हाथ के अंगूठे तथा विशेषकर ब्लेड और पिन का प्रयोग करते हैं। वे पुरानी लकड़ी के टुकड़ों से भी खूबसूरत टैक्सचर्स (पोत) उत्पन्न करते हैं। कभी–कभी कपड़े के टुकड़े को जलाकर उसे कैनवास पर चिपका कर उस पर पेंट करते हैं जो पुरातनता का आभास देते हैं, कई बार वे एक ही कैनवास पर दो या तीन चित्रों को समायोजित करते हैं।

चित्रकला को पूर्ण रूप से समर्पित रामेश्वर सिंह एक स्वतन्त्र जीवी चित्रकार है। उत्कृष्ट कलात्मक कार्यों के लिए आपको सन् 1984

में केन्द्रीय ललित कला अकादमी, दिल्ली ने राष्ट्रीय पुरस्कार इसी वर्ष उत्तर प्रदेश ललित कला अकादमी, लखनऊ ने राज्य पुरस्कार 1985 व 1987 में बम्बई आर्ट सोसायटी एवं 1995 में राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर ने राज्य पुरस्कार आदि अनेक पुरस्कारों से सम्मनित किया गया। आपने स्वदेश में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी कला प्रदर्शनियों का आयोजन किया व भागीदारी की।[18]

परम्परागत कला को नया मोड़ देकर अपनी नवीन शैली स्थापित करने वाले रामेश्वर सिंह की कृतियाँ देश–विदेश के प्रमुख कला–संग्रहालयों, कला–दीर्घाओं, संस्थाओं तथा व्यक्तिगत संग्रहों में सुरक्षित है। इनमें राष्ट्रीय आधुनिक कला दीर्घा, नई दिल्ली; केन्द्रीय ललित कला अकादमी, नई दिल्ली; राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर; चण्डीगढ़ संग्रहालय, पश्चिमी क्षेत्रीय सांस्कृतिक केन्द्र, उदयपुर; दक्षिण क्षेत्रीय सांस्कृतिक केन्द्र, नागपुर; साहित्य कला परिषद्, नई दिल्ली; कला महाविद्यालय, नई दिल्ली; एयर इण्डिया व भारत सरकार का विदेश मन्त्रालय आदि विशेष उल्लेखनीय है।

विगत कुछ वर्षों से रामेश्वर जी ने दिल्ली को ही अपना स्थाई निवास बना लिया था। वहीं पर एक लम्बी बीमारी के उपरान्त 9 अक्टूबर 2014 को वे दिवंगत हुए। रामेश्वर सिंह हमारे बीच नहीं रहे किन्तु लोक संस्कृति को उनकी देन आज उनके चित्रों के रूप में जीवित है।

इस प्रकार से पारम्परिक कलाकारों ने कलांकन कर जहाँ फड़ चित्रण परम्परा को जीवित रखा वहाँ रामेश्वर सिंह, मनोज जोशी व प्रदीप मुखर्जी ने उसे नया मोड़ देकर समसामयिकता से जोड़ा। अतः फड़ कला की सरसता तो अपनी लौकिक अवस्था में विद्यमान रही साथ ही उसमें आधुनिकता का परिवेश भी समाहित हो गया।

संदर्भ ग्रन्थ

1. नरसिंह पुराण पृष्ठ सं. 24, 25, 34, 38
2. Shiv Kumar Sharma: India Printed Scroll, Varansi, 1993, Page 96.
3. वन्दना जोशी : मेवाड़ की लोक कला–फड़, उदयपुर, 2012, पृष्ठ सं. 3
4. मोतीचन्द्र जैन : जैन मिनिएचर पेंटिंग्स फ्रॉम वेस्टर्न इण्डिया, अहमदाबाद, 1949 पृष्ठ सं. 55
5. गीता शर्मा : 'राजस्थान की फड़ चित्रकला – लोक कला के संदर्भ में', अक्षय कलित, 2012, पृष्ठ सं. 62–63
6. महेन्द्र भानावत : 'राजस्थान के लोक चित्रांकन', आकृति–80, राज.ल.कला अकादमी, जयपुर, 1982, पृष्ठ सं. 57
7. जयसिंह नीरज व भगवती लाल शर्मा, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, जयपुर, 1989, पृष्ठ सं. 100
8. प्रेमचन्द गोस्वामी : भारतीय कला के विविध स्वरूप, जयपुर, 1997, पृ.सं. 78
9. महेन्द्र भानावत : 'राजस्थान के लोक चित्रांकन', आकृति– 80, ललित कला अकादमी, जयपुर, 1982, पृष्ठ सं. 58
10. गुलाब कोठारी : राजस्थान की ग्रामीण कलाएँ और कलाकार, जयपुर, 1997, पृष्ठ सं. 24
11. वन्दना जोशी : मेवाड़ की लोक कला–फड़, उदयपुर, 2012, पृष्ठ सं. 15
12. ओम प्रकाश जोशी : 'राजस्थान की पड़ चित्र शैली तथा चित्रकार', आकृति, राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर, 1987, पृष्ठ सं. 23
13. राधाकृष्ण वशिष्ठः राजस्थान के आधुनिक कला सर्जक, जयपुर, 2015 पृष्ठ. सं. 119
14. राजेश कुमार व्यास : कलावाक्, राज.ल.कला.अकादमी, जयपुर, 2010, पृष्ठ. सं. 80
15. आकृति समाचार बुलेटिन, राज.ल.कला.अकादमी, जयपुर, जनवरी 1993, पृष्ठ. सं. 4
16. जगदीश चन्द्रिकेश : राजस्थान के समसामयिक कलाकार–92, राज.ल.कला अकादमी, जयपुर, पृष्ठ सं. 49
17. www.saffronart.com/artists/rameshwar-singh
18. वन्दना जोशीः मेवाड़ की लोक कला–फड़, उदयपुर, 2012 पृष्ठ सं. 61